अमृत वाणी

समर्थ सद्गुरु परमसन्त महात्मा

श्री रामचन्द्रजी महाराज

के

उर्दू में लिखित आध्यात्मिक लेखों का

हिन्दी अनुवाद

राम समाधि आश्रम

मनोहरपुरा, जयपुर

प्रकाशक :
राम समाधि आश्रम,
मनोहरपुरा, जयपुर

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण - 2008

द्वितीय संस्करण - 2011

तृतीय संस्करण - 2012

मूल्य : 5.00

प्राप्ति स्थान :
राम समाधि आश्रम,
मनोहरपुरा, जयपुर
मो.: 9929819111, 9461600003,
9982076750, 9828269273

कम्प्यूटर टाईप सेटिंग व प्रिंटिंग :
इन्टरनेशनल स्कूल ऑफ् एस्ट्रोलॉजी एण्ड डिवाइन साइंसेज (प्रकाशन विभाग)
'रामाश्रम' 3/18,मालवीय नगर, जयपुर-302 017
फोन : 0141-2521849 • मो.: 94134 44188
web : www.astrologynspiritualism.com

आत्म निवेदन

मेरे गुरुदेव, समर्थ सद्गुरु, परमसन्त श्रीमान महात्मा श्रीरामचन्द्र जी महाराज द्वारा लिखित यह लेख लगभग सन् 1924-25 में वार्षिक भण्डारे के अवसर पर स्वयं ने ही पढ़कर सुनाया था।

उनकी भाषा उर्दू थी, अतः यह उसका हिन्दी रूपान्तरण है। हमारे सत्संगी भाइयों के लाभार्थ, यह प्रस्तुत है। मेरा विश्वास है कि इससे उनके मन की अनेक भ्रान्तियाँ दूर होंगी और साधन के प्रति सतत् निष्ठा जागृत होगी।

विनीत

डॉ. हरनारायण सक्सेना

जयपुर

खाली

अनुक्रमणिका

	प्रसंग	पृष्ठ
•	दुःख का कारण	1
•	सद्‌गुरु	6
•	व्यवहार	7
•	त्याग	9

खाली

दुःख का कारण

मेरे प्यारो,

दुःख का कारण भ्रम और शंकाएँ हैं । इनके द्वारा ही हम अपने लिए नये-नये दुःख पैदा कर लेते हैं। बिना सोचे-समझे अंधाधुंध किसी काम को करते रहने से कुछ-न-कुछ परिणाम अवश्य होता है। यह भी सम्भव है कि ऐसा करने पर भी सहस्रों मनुष्यों में से कोई एक पुरुष अपने ध्येय को प्राप्त कर सका हो; परन्तु अधिकतर यही देखा गया है कि जब तक समझ-बूझ के साथ ढंग से काम नहीं किया जाएगा, उस कार्य के सभी अंगों को ठीक तौर पर नहीं चलाया जाएगा तब तक सफलता मिलना असम्भव है।

जैसे दवा के साथ पथ्य होता है उसी प्रकार प्रत्येक काम के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जिन्हें मुख्य कार्य के समान ही निभाना भी अत्यन्त आवश्यक होता है।

संसार में अधिकतर मनुष्य ऐसे हैं कि जो परमार्थ और परमार्थ के असली रूप को नहीं समझते और न कभी वे उसके समझने का प्रयत्न ही करते हैं; इसीलिए वे उसके पूर्ण लाभ से वंचित रह जाते हैं। परमार्थ तक पहुँचने के लिए एक रास्ता है जिस पर चलकर हम वहाँ पहुँच सकते हैं। परन्तु इस मार्ग पर चलने वाले मुसाफिर ऐसी आशाओं को लेकर उधर रवाना होते हैं कि जिनके कारण वे उत्तराखण्ड न पहुँचकर दक्षिण दिशा में जा पहुँचते हैं और कभी-कभी भयानक झंझटों में अपने आपको फंसाकर वहीं नष्ट होकर रह जाते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस ओर चलने वाले पथिक में आगे चलकर कई प्रकार की ऐसी स्थितियाँ, सिद्धियाँ और शक्तियाँ आने लग जाती हैं कि जिनका बाहरी रूप ऐसा दिखाई देता है कि

ये हमारे शारीरिक लाभ अथवा सांसारिक पदार्थों के भोग के लिए आई हैं; परन्तु यदि हम इनकी ओर ध्यान न दें और आगे बढ़ते चले जायें तो ये आत्मसाक्षात्कार में हमारी सहायक बन जाती हैं और उनके द्वारा ही हम अनन्त सुख प्राप्त कर सुखी बनते हैं।

परन्तु अपनी गलती से उनको ही हम ध्येय समझकर यदि अपना झुकाव उधर को ही कर देते हैं तो ये योग-शक्तियाँ हमारा मुँह नीचे की ओर मोड़ देती हैं और हमारा पतन करती हुई थोड़े ही दिनों में वहाँ लाकर पटक देती हैं कि जहाँ पर फिर न उन शक्तियों का पता चलता है और न उस मार्ग का और हम पूरे संसारी मनुष्य बनकर रह जाते हैं, जिसके लिए हमें कभी-कभी पछताना भी पड़ता है। ''यथा मति तथा गति।''

इस मार्ग पर चलने वालों ने क्या कभी यह विचार किया है कि हम कौन-कौनसी सांसारिक आशाओं की गठरी लादे हुए आज इधर को चल रहे हैं। हम पहाड़ की ऊँची चोटी पर पहुँचना चाहते हैं परन्तु हमारे सिर पर इतना बोझ लदा हुआ है कि जिसके कारण हम थकित हुए जा रहे हैं। हमारे पाँव लड़खड़ा रहे हैं। हमारी शक्ति जवाब दे रही है। ऐसी दशा में क्या यह सम्भव नहीं कि हमारे पाँव फिसल जायें और हम औंधे मुँह किसी खड्डे में गिर कर अपनी हड्डी पसली तोड़ लें। ऐसा होने पर हमारा सारा परिश्रम व्यर्थ हो सकता है।

हमें चाहिए कि इस ऊर्ध्व गति के समय बहुत सावधान रहें। गठरी को सिर से दूर फेंक दें और हलके बनकर जल्दी-जल्दी कदम उठाते हुए उस स्थान पर पहुँच जायें कि जहाँ से न लौटना होता है और न ही किसी प्रकार का दुःख है।

आओ, देखें, रास्ता क्या है? हमारा इष्ट (ध्येय) क्या है? इस ध्येय को पाने का साधन क्या है? ध्येय और साधन में भेद क्या है? देखना यह है कि हम इस ओर साधन को ध्येय मानकर चल रहे हैं या ध्येय को ध्येय समझ कर?

जिस मार्ग पर तुमको चलना है, वह निष्कामता का मार्ग है। यदि तुम अपने मन में किसी लालसा को लिये हुए यहाँ आये हो या किसी प्रकार की अन्य इच्छा (इस लोक की अथवा परलोक की) तुम्हारे हृदय में उठ रही है तो तुमको समझना चाहिए कि हम अपने सही मार्ग से च्युत हो रहे हैं। जो मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए साधन और सत्संग करता है, वह वास्तव में जिज्ञासु नहीं है। वह ईश्वर को नहीं चाहता और न उसके लिए यहाँ आता है।

हमारा जो मार्ग है, उसमें किसी मनुष्य को यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि उसमें ऐसी सिद्धियाँ और शक्तियाँ आ जायेंगी कि जिनके द्वारा वह भूत-भविष्य का ज्ञाता हो जाएगा अथवा और कोई अद्‌भुत चमत्कार दिखाने लग जाएगा कि जिसके कारण वह समाज में प्रतिष्ठित समझा जाने लगे और सर्वसाधारण उसकी महिमा के गीत गाने लगें।

हम किसी से यह वायदा भी नहीं करते कि उसके पाप क्षमा करा दिये जायेंगे तथा अशुभ कर्मों के करने पर भी वह यम-दण्ड से बचा दिया जाएगा। तुम लोगों को यह आशा छोड़ देनी चाहिए।

हम यह भी वायदा नहीं करते कि आज से तुम्हारे सारे कार्य ठीक होंगे और तुम क्लेशों से बचा दिये जाओगे। ये तो सब भोग हैं। चाहे भजन करो या न करो, तुम्हें भोगने ही होंगे। गंडा, तावीज़, झाड़फूँक, दुआ इत्यादि के द्वारा लोगों को संसारी लाभ हमारे यहाँ नहीं पहुँचाये जाते। कोई व्यक्ति अपना मुकदमा जीतने की गरज़ से, परीक्षा में पास होने के लिए, रोजगार और नौकरी के लिए तथा रोगों से निरोग होने के लिए, सन्तान प्राप्ति के लिए अथवा किसी दूसरे कष्ट को दूर करने के लिए यहाँ आया है तो वह अधिकारी नहीं है। ईश्वर प्राप्ति के लिए ये सारे ही विचार त्याग देने चाहिए और कभी आशा नहीं रखनी चाहिए कि हम उनकी आगे पीछे की बात बता देंगे। यदि तुम्हें इन बातों की चाहना हो तो इसके लिए संसार में कमी नहीं है। ऐसे लोगों के पास तुम जा सकते हो।

कई लोग यह चाहते हैं कि उन्हें कुछ भी परिश्रम न करना पड़े। गुरु अपनी शक्ति से ही हमें ऊँचे स्थानों में पहुँचा दे और ऐसी स्थिति कर दे कि उनमें सत्कर्म स्वाभाविक रूप से आजायें। न कभी पाप-कर्म की ओर उनका चित्त जाए और न कभी बुरे विचार उनके अन्दर उठें। अथवा उनकी बुद्धि इतनी तीव्र हो जाए कि धर्म के रहस्य को समझने के लिए उन्हें तनिक भी दिमाग़ न लगाना पड़े। ये सब थोथी बातें हैं। भाग्य से अथवा ईश्वर की दया से कोई जिज्ञासु एकदम चाहे इस अवस्था को पहुँच गया हो, परन्तु हर एक के लिए यह नियम लागू नहीं हो सकता।

प्रत्येक साधक की आन्तरिक अवस्था में भेद होता है। कोई शीघ्र ही उन्नति कर जाता है और कोई देर से। कोई बैठते-बैठते ही आनन्द में डूब कर अपनी सुधबुध बिसार देता है और किसी को वर्षों बीत जाते हैं परन्तु वह वैसा ही दिखाई पड़ता है। एक कदम भी आगे नहीं चल पाता। ये सब बातें अपनी पात्रता और संस्कारों पर निर्भर हैं।

कई लोगों को साधन के समय अद्भुत-अद्भुत प्रकाश दृष्टिगोचर होते हैं। कई प्रकार के नये-नये शब्द अन्तर में सुनाई देते हैं। कई साधकों को कुछ भी अनुभव नहीं होता। वह आँख मूंदे एकदम आगे बढ़ता चला जाता है। किसी को स्वप्न में या ध्यान में नयी-नयी विचित्र बातें अनुभव होती हैं और किसी को कुछ भी नहीं। यह सब बीच की बातें हैं। इनकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। अपने लक्ष्य पर पहुँचने का उद्योग करना चाहिए।

लक्ष्य या आदर्श क्या है, सुनो! निष्कामता के साथ कर्त्तव्य समझ कर उसकी आज्ञा का पालन करना और उसकी इच्छा में प्रसन्न रहना यही धर्म है।

धर्म का अर्थ केवल 'कर्त्तव्य' है। धर्मशास्त्र में इसको दो भागों में बाँटा है — एक मानसिक धर्म और दूसरा सामाजिक धर्म। मानसिक धर्म के भी दो भाग हैं। एक यह कि जिसका

सम्बन्ध बाहरी कर्मों से है, जैसे सन्ध्या, प्रार्थना, जप-तप, कीर्तन, व्रत, यज्ञ, बलिवैश्य देव, तीर्थ, दान इत्यादि। इनमें मन इन्द्रियों के साथ काम करता है, इसलिए ये बाहरी कर्म कहलाते हैं।

दूसरे आन्तरिक धर्म वे कहलाते हैं, जिनमें केवल मन ही अपना काम करता है, जैसे- प्रेम के साथ निरन्तर उसकी याद करना, उस पर दृढ़ विश्वास होना, उससे डरना, संसारी पदार्थों से लगाव कम करना, वैराग्य होना, जो मिले उस में सन्तुष्ट रहना, ममत्व और तृष्णा का कम करना, भजन के समय मन को उसकी ओर से न हटने देना, सत्कर्मों की ओर रुचि होना, दूसरों को नीच और बुरा न समझना, दीन-दुखियों पर दया करना, क्रोध न करना, अपनी किसी वस्तु के लिए अभिमान न करना इत्यादि। इन सब पर चलना ही पंथ या मार्ग कहलाता है।

जिस प्रकार बाहरी कर्म किये जाते हैं, उसी प्रकार भीतरी कर्मों के करने की भी आज्ञा है। जब तक मन का व्यवहार ठीक नहीं होता तब तक बाहरी कर्म ठीक नहीं हो सकते, जैसे ईश्वर के लिए तुम्हारे मन में पूर्ण श्रद्धा नहीं है, उसका मूल्य तुम नहीं जानते तो सन्ध्या करने में सुस्ती हो जाएगी या उल्टी-सीधी जल्दी-जल्दी कर ली जाएगी और उपासना करने के लिए मन तैयार न होगा।

बाहरी कर्मों के करने में मनुष्य चाहे जितनी होशियारी करे, जब तक मन नहीं संभलेगा, तब तक वह अधिक नहीं चल सकती। इसका गढ़ना और उच्च भाव का बनाना आवश्यक है।

सद्गुरु

अपने अन्दर की खराबियाँ (विकार) समझ में कम आ पाती हैं। यदि आ भी जायें तो मनुष्य को उनके ठीक करने का उपाय मालूम नहीं होता और मालूम भी हो तो मन की खींचातानी के कारण उस पर आचरण कठिन हो जाता है। इसलिए इन आवश्यकताओं को समझने तथा अपने विकारों को दूर करने के लिए किसी आदर्श गुरु को ढूँढ़ना होता है और उसी की शिक्षा के अनुसार चलना पड़ता है।

गुरु का काम है कि वह निस्वार्थता के साथ अपने शिष्य को समय-समय पर सचेत करते रहें उसके अन्दर जो विकार हैं उन्हें दूर करने की क्रियाएँ बताते रहें। मन की दुरुस्ती बिना साधन और अभ्यास के नहीं होती। इसलिए गुरु का काम है कि शिष्य को किसी न किसी आन्तरिक साधन में अवश्य लगा दें; परन्तु वह साधन ऐसा हो जो शिष्य की अवस्था और समय के अनुसार ठीक हो तथा जिसको वह कर सके।

यह संसार नाम और रूप से बना है। ब्रह्म का भी नाम और रूप है। इसलिए साधन में भी इन्हीं से काम लेना होता है। इनमें से एक 'शब्द योग' और दूसरे को 'दृष्टियोग' कहते हैं। अच्छा तो यह होता है कि ये दोनों साथ-साथ चलें।

व्यवहार

व्यवहार ठीक हुए बिना परमार्थ नहीं बनता। इसलिए आगे व्यवहार के सम्बन्ध में बतलाया जाता है। सुनो !

सांसारिक और मानसिक रीति-रिवाज के पालन करने को व्यवहार कहते हैं। इसमें आचार-विचार, लौकिक और कौटुम्बिक सभी रीतियाँ सम्मिलित हैं। हमारी रहन-सहन कैसी हो, हम दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करें, यह सब 'व्यवहार' है।

व्यवहार के सम्बन्ध में, आओ! पहले उन बातों पर विचार करें, जो तुम्हारे इस मार्ग के लिए लाभदायक हैं। जिस पन्थ या परम्परा के तुम अनुयायी बने हो तथा जिस पथ पर तुम जाना चाहते हो, उसके सम्पूर्ण मार्गदर्शन, रीति-नीति, और विधि-विधान को जाने बिना उससे लाभ नहीं उठा सकते।

तुम्हें चाहिए कि समय-समय पर जो शिक्षाएँ और निर्देश तुम सुनते हो, उन्हें लिख लो। कभी-कभी एकान्त में बैठकर विचार करो और उन्हीं के अनुसार अपने जीवन को बनाओ।

जो पुस्तकें यहाँ से प्रकाशित हों, उनकों ध्यानपूर्वक पढ़ो अथवा किसी दूसरे से सुनो। फिर उन पर मनन करो। उसके पश्चात् अपने से मिलान करो। जो कमी अपने में देखो, उसे जल्दी से पूरा कर डालो।

नित्य-नियम जैसे सन्ध्या-पूजा, भजन, उपासना को कभी भूलकर भी मत छोड़ो। यदि उस समय तुम्हारे इस मार्ग के और साथी (सत्संगी) मौजूद हों तो तुम सब मिलकर एक जगह, एकसाथ बैठकर इस कार्य को प्रेम और सच्ची निष्ठा के साथ करो। इससे तुम और भी जल्दी सफल हो जाओगे।

अपने सत्संग के नियम बना लो और दृढ़ता के साथ उनका पालन करो। जो कोई मनुष्य अकारण ही आलस्य अथवा भूल से नियमों का पालन न करे, उसे दण्ड दो। पश्चात्ताप करना, व्रत रखना, दान देना इत्यादि। इस प्रकार के दण्ड देने का विधान सत्संगों में हुआ करता है।

नेक कमाई करो। खेतीबाड़ी, नौकरी, व्यापार, जमींदारी इत्यादि से जो कुछ आमदनी तुम को हो, उसका एक भाग धर्मार्थ निकालो और सत्संग में जमा करो। फिर उससे ऐसे काम करो जो दूसरों के लाभ के हों।

तुम्हारे अकेले की उन्नति से कुछ नहीं होगा। स्त्री, बच्चों और अपने अन्य कुटुम्बियों को भी इधर लगाओ जिससे तुम्हारे घर का वायुमण्डल शुद्ध और शान्त हो जाय। एक से विचार के मनुष्यों में ही प्रेम हो सकता है। बिना सब लोगों में प्रेम हुए, अशान्ति दूर नहीं हो सकती।

ऐसा करने के लिए दिन-रात में से कोई एक समय ऐसा नियत करो कि उस समय सब मिलकर धर्म सम्बन्धी चर्चा किया करें। मुख्य मुख्य धार्मिक पुस्तकें पढ़ें और उनको दूसरों को समझाएँ अथवा जो बातें तुम कहीं बाहर से सुन आओ और वे सब के लिए लाभदायक प्रतीत हों तो उन्हें घर वालों को अवश्य बताओ।

त्याग

पहले संक्षेप में उन बातों को बताया है, जिनको तुम्हें ग्रहण करना है। अब आगे व्यवहार की उन बातों को बताते हैं, जिनको तुम्हें त्यागना होगा। इन्हीं को यम-नियम कहते हैं।

भोजन सादा और सात्विक ग्रहण करो। किसी प्राणी को मत सताओ। मांस, मदिरा, नशे की चीजें तथा प्याज, लहसुन इत्यादि और गरम मसाले खाना छोड़ दो, क्योंकि ये सब इस मार्ग के लिए हानिकारक हैं। किसी स्त्री या पुरुष को कुदृष्टि से मत देखो। स्त्रियों और लड़कों से अधिक मेल न रखो। अकेले में उनके पास मत बैठो। रात्रि में उनके साथ निवास मत करो। स्त्रियों को चाहिए कि बिना किसी मजबूरी के परपुरुषों के सामने न जायें, चाहे वह गुरु या रिश्तेदार ही क्यों न हों। यदि जाना ही पड़े तो अपने शरीर के अंगों को खूब ढक लें और किसी दूसरी स्त्री या बच्चे को साथ ले लें।

अपने वस्त्रों को स्वच्छ और शुद्ध रखो। कपड़े सादा पहनो। फैशन न बनाओ। अधिक ज़ेवर और कीमती कपड़ों के पहनने से अभिमान आता है। दिखावा और बनावट से दूर रहो। ऐसा कपड़ा पहनो कि जिसमें शरीर के अंग न दिखाई दें। धोती इत्यादि इतनी लटका कर मत पहनो कि मलमूत्र अथवा गंदे पानी के छींटे उन पर पड़ें। शुद्धता का पूरा ध्यान रखो।

आजकल सब बातों में दिखावा बढ़ गया है। मनुष्य की जो कुछ हैसियत है, उससे ज्यादा अपने आप को साबित करना चाहता है। शादी, व्यवहार, रस्मो-रिवाज़, न्यौता-पन्यौता देने लेने और कपड़ों इत्यादि में लोग कर्ज़ लेकर खर्च कर डालते हैं। फिर अशान्ति और दुःख उठाते हैं। यह बहुत बुरा है। जितने तुम हो या जो कुछ तुम्हारी हैसियत है, उतना ही दूसरों पर प्रकट करो। सच्चाई और

सादगी बड़ी अच्छी चीज़ है इससे दुनियाँ में बड़ी इज्ज़त होती है।

मुर्दों पर न रोओ। बच्चों को पैसे की आदत न डालो। तेरहवीं आदि पर बहुत खर्च न करो। गरीबों पर दया करो। झूठी नालिश, झूठी गवाही, सूद और रिश्वत से बचो। चुग़ली, निन्दा, झूठ, कपट, धोखा, शास्त्रार्थ, बट्टा जुआ, चोरी तथा ताश-गंजफा खेलना, कबूतरबाज़ी, थियेटर इत्यादि ऐसे तमाशे जिनसे वृत्ति खराब हो-देखना, शराब या भंग बेचना, बिना काम के निठल्ले पड़े रहना, ज्योतिषी व रमल वालों से आगे पीछे की बातें पूछना, देवताओं को इष्ट मानना, कुत्ते बिल्ली इत्यादि पालना और उनको छूना, चित्र बनाना, भूत-प्रेत, मीर-मसान पूजना इत्यादि इस प्रकार की बातें त्यागने योग्य हैं।

स्त्रियों को चाहिए कि पुरुषों की आज्ञाकारिणी रहें। उनसे राय लेकर अपनी गृहस्थी का काम चलाएँ। धन को फिज़ूल न उड़ावें। बिना पूछे किसी दूसरी जगह न जायें। पति की इज्ज़त करें। उनसे प्रेम का व्यवहार करें। उनसे कभी कटु वचन न बोलें। न कभी कठोर शब्दों में उत्तर दें। इसी प्रकार पुरुषों को भी चाहिए कि उनकी हर बात का ध्यान रखें। उनसे प्रेम का बर्ताव करें।

सरल और सादा जीवन बनाना ही फ़कीरी या साधुता है। इसमें आकर पीरी-मुरीदी (गुरुडम) का ढोंग रचना, तावीज़, गण्डा, झाड़-फूँक करना तथा करामात दिखाते फिरना बहुत बुरा है। इससे मनुष्य पतित हो जाता है। चुपचाप प्रेम के साथ उसका भजन करो। जिस मार्ग को पकड़ा है उसमें श्रद्धा और विश्वास रखते हुए आगे बढ़े चलो। अमीरों और बुरे लोगों की संगत से बचते रहो। ईश्वर दया करेगा और तुम्हारा बेड़ा पार हो जाएगा।

॥ ओउम् शम् ॥